वर्षाजल संरक्षण

एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

लेखक- प्रेमयोगी वज्र

2020

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)-

इस पुस्तक को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

पुस्तक/पुस्तक-भाग परिचय-

मित्रो, बात उस समय की है जब भारत की नरेगा योजना अपने चरम पर थी। केंद्र से धड़ाधड़ बजट आ रहा था। राज्य सरकारें उसे खर्च नहीं कर पा रही थीं। कुशल कामगारों की किल्लत पहले से ही थी, ऊपर से उनकी मांग बढ़ने से और बढ़ गई थी। इसलिए बहुत सारे गरीब तबके के लोग तो योजना का लाभ ही नहीं उठा पा रहे थे। योजना का पैसा तो काम पूरा होने के बाद मिलता था। पंचायत के जनरल हाऊस में विशेष काम के निमित्त शैल्फ बनाई जा रही थी। वार्ड मेंबर शैल्फ में हरेक परिवार का नाम दाल देता था, ताकि यदि बाद में उनका मन शैल्फ के सैंक्शनड काम करवाने का कर जाए, तो उन्हें अपने काम पहले से ही स्वीकृत/सेंक्शन होए हुए मिले। शैल्फें धड़ाधड़ स्वीकृत भी हो रही थीं। लेखक ने भी नरेगा के तहत एक वर्षाजल संग्रहण टैंक बनाया।

अपने स्वयं के द्वारा महसूस किए गए उपरोक्त व्यावहारिक बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने इस पुस्तक/पुस्तक-भाग में अपनी आपबीती का वर्णन किया है। आशा है कि पुस्तक/पुस्तक-भाग पाठकों को रोचक लगेगी, और साथ में आवश्यक ज्ञान भी प्रदान करेगी।

मित्रो, मेरा घर एक छोटी सी पथरीली पहाड़ी पर था। वहां की मिट्टी भी रेतीली जैसी थी। इससे बारिश का पानी भी उससे बहुत जल्दी उड़ जाया करता था। धुप भी वहां पर काफी चटकीली लगती थी। सिंचाई के वहां कोई भी साधन मौजूद नहीं थे। खेती का सारा दारोमदार बारिश पर ही था। बुजुर्गों ने मेरे गाँव में बड़ी कठिनाईयों के बीच में एक सीमेंट का बना हुआ पक्का टैंक बनाया हुआ था, और एक मिट्टी की कच्ची जोहड़ बनाई हुई थी। उनमें बरसाती खड्ड का पानी जमा कर दिया जाता था। सर्दियों के कुछ महीनों के लिए खड्ड में नाममात्र का पानी रहता था। उस पानी की बूँद-२ से वे दोनों जल-स्रोत धीरे-२ भरते रहते थे। उससे थोड़ा-बहुत पानी साग-सब्जी, मटर की फसलों आदि के लिए मिल जाया करता था। गर्मियों में तो चारों तरफ सूखा ही सूखा हो जाता था। गर्मी में जो कभी-कभार बारिश होती थी, उससे घर की छत पर इकट्ठे हुए पानी को भंडारण करने की भी व्यवस्था नहीं थी। अकेली व छिटपुट बारिश में उतना पानी तो होता नहीं, जिससे बरसाती खड्ड में पानी चलने लगे। इससे वर्षा जल संग्रहण की महत्ता समझ में आती है। वर्षा जल संग्रहण के अभाव के कारण गाँव के लोग बरसात से ठीक पहले लगाईं जाने वाली टमाटर, शिमला मिर्च आदि नकदी फसलों को नहीं लगा पाते थे। जो थोड़ा-बहुत पुराना पानी टैंक में संचित होता था, उससे कुछ प्रभावशाली लोग ही थोड़ी सी नकदी फसल लगा पते थे। अन्य लोग तो बरसात शुरू होने पर ही नकदी फ़ासल उगा पाते थे, जिससे फसल की उत्पादकता बाहुत घट जाती थी। साथ में, खरपतवार को नियंत्रण में रखना भी मुश्किल हो जाता था। वास्तव में बरसाती फसल को बरसात शुरु होने से 15-20 दिन पहले लगा दिया जाता है। इससे जब तक बरसात आती है, तब तक पौधे जमीन से 1-1/2 फुट तक ऊपर उठ जाते हैं। उसमें पानी की कमी के कारण खरपतवार नहीं होता। जब बरसात आती है, तब फ़सल पानी पीकर एकदम से फैल जाती है। खरपतवार भी उगना शुरू हो जाता है, पर वह फसल के फैलाव के नीचे धूप-हवा की कमी से दबा रह जता है, और ऊपर उठ नहीं पाता। यदि बरसात आने पर फसल लगाई जाए, तो खरपतवार ऊपर फैल जाता है, और पौधा नीचे रह जाता है। खरपतवार फसल की सारी खुराक खुद खा लेता है। इससे फसाल की पैदावार बहुत घट जाती है।

बरसाती मक्की को बरसात शुरू होने से 15-20 दिन पहले और यहाँ तक की महीना पहले लगाना भी आसान होता है, क्योंकि उसे बहुत कम पानी की जरूरत होती है। बरसात आने तक 1-2 बारिश से भी उसका काम चल पडता है। दूसरी ओर अधिकाँश नकदी फसलें बाहुत नाजुक होती हैं, और ज्यादा पानी की मांग करती हैं। उसका पौधा ही नर्सरी से उखाड़कर सीधा ही खेत में लगाया जाता है, बीजारोपण नहीं किया जाता। इसलिए उसे नई जगह पर जड़ जमाने के लिए भी लगातार सिंचाई की जरूरत होती है। उसे सुबह-शाम दो बार सींचते रहना पड़ता है। एक पौधे को आकार के अनुसार 100 मिलीलीटर से आधा लीटर पानी लग जाता है। इसलिए 1000 पौधों के लिए लगभग 500 लीटर पानी प्रतिदिन चाहिए होता है। यदि उसे 20 दिनों तक लें, तो कुल 10 से पंद्रह हजार लीटर पानी की जरूरत पड़ती है। इसका मतलब है कि एक मध्यम आकार का पानी का टैंक भरा हुआ चाहिए।

दोस्तों, मेरे घर के नीचे, लगभग 2 किलोमीटर दूर और 200-300 मीटर की खड़ी नीचाई पर एक बारहमासी खड्ड भी बहती थी। एक बार मेरे गाँव सहित कुछ गाँवों ने मिलकर उससे सरकारी सिंचाई जल परियोजना को अमलीजामा पहनाने की कोशिश की। सारा कागजी काम हो चुका था। बिजली की मशीनें और पानी के पाईप 1-2 दिन में नदी में पंहुचाए जाने वाले थे। तभी लाभ से वंचित दूर-पार के गाँवों के, विरोधी लोगों को इसकी सूचना मिल गई। उन्होंने जल्दी से पंचायत में योजना के खिलाफ प्रस्ताव पारित करके अपने हमदर्द मंत्री को उसे पेश कर दिया। उन विरोधी लोगों ने प्रस्ताव में अजीब किस्म का तर्क पेश किया था। उनका लिखना था कि खड्ड में कम पानी है, और गर्मियों में तो नाममात्र का रहता है। दरअसल ऐसा नहीं था। उस योजना स्थल के नीचे भी खड्ड में एक निजी सिंचाई परियोजना चल रही थी। दरअसल निजी परीयोजना चलाने वाले चाहते थे कि उनकी ओर आने वाले खड्ड में पानी में कोई कमी ना आए। उन्हें निजी परियोजना वालों ने उक्त सरकारी योजना के खिलाफ आस-पास के गाँवों को भड़काया था। गर्मी के एक-आध महीने ही पानी इतना कम होता था कि मिल-बाँट कर काम चलाना पड़ता। परन्तु उन्हें वह भी मंजूर न था। उनकी दूसरी दलील यह थी कि सरकारी सिंचाई योजना से सरकारी पेयजल योजना में पानी की कमी से बाधा पहुँचती, क्योंकि वह खड्ड में निचाई की तरफ थी। पर वास्तव में हकीकत यह थी कि उनकी अपनी निजी सिंचाई परियोजना भी उस सरकारी पेयजल योजना से ऊपर ही बनी हुई थी, और वह उसके बहुत बाद ही बनी थी। उससे होने वाले नुक्सान की वे बात ही करना व सुनना नहीं चाहते थे। ग्रामसभा में तो विरोधी लोग ईर्ष्या व स्वार्थ के वशीभूत होकर चित्र-विचित्र और अड़ियल रवैये वाली बहसें करते थे। उनका मुख्य कुतर्क था कि यदि पानी मिले, तो सबको मिले, चाहे एक-२ लोटा ही क्यों न मिले; और यदि न मिले, तो किसी को न मिले। अजीब सा हठ था। हमने उन्हें यह भी आश्वासन दिया कि उस योजना को धीरे-२ पूरी पंचायत तक बढ़ा देंगे, जिससे मिल-बाँट कर पानी का इस्तेमाल करेंगे। जब खड्ड में पानी काफी होता था, तब तो पूरी पंचायत का भी गुजारा हो सकता था। उस समय बजट कम था, और केवल एक ही वार्ड के लिए स्वीकृत हुआ था। जूनियर इंजीनियर ने भी सर्वे करके बताया था कि खड्ड का पानी एक ही वार्ड के लिए पर्याप्त था, क्योंकि उन्होंने भरी गर्मी में सर्वे किया था। वैसे भी उस साल गर्मी ज्यादा पड़ी थी। सबसे ज्यादा हक़ तो खड्ड के सबसे नजदीक बसे हुए वार्ड का ही सिद्ध होता था, जो हमारा वार्ड था। वैसे भी हमारे वार्ड के लोगों के नाम से खड्ड में घराट और पानी की कूहलें हुआ करती थीं, जो आज भी सरकारी दस्तावेजों में दर्ज हैं। पर विरोधी लोगों के सर पर स्वार्थ व ईर्ष्या की भावना इस कदर हावी थी कि वे कोई भी बात मानने को तैयार नहीं थे। यहाँ तक कि हमारे अति निकट के संबंधी भी इस मामले में मूक स्वरों में हमारे विरोधी बन गए थे। मुंह के सामने उनका कुछ नाटक होता था, और पीठ के पीछे कुछ और। आप सब भाइयों-बहनों को हमारे देश की वोट बैंक पोलिटिक्स का पता ही है। चाहे कितना ही बढ़िया काम क्यों न हो, यदि उससे वोटों का नुक्सान हो रहा हो, तो उसे होने नहीं दिया जाता। इसी तरह वोटों के लालच में घटिया कामों को भी अमलीजामा पहना दिया जाता है। खैर, मंत्री महोदय बहुसंख्यक आबादी के प्रस्ताव को ठुकरा नहीं पाए, और उसे रद्द कर दिया गया, जिससे हमारी परियोजना वोटबैंक की बलि चढ़ गई।

परियोजना के रद्द होने पर उन स्थानीय नेताओं के चेहरे फीके पड़ गए, जिन्होंने उसे लाने के लिए बहुत मेहनत की थी। दूर-पार के बड़े व हमारे हितचिन्तक नेता भी पूरी पंचायत को सामने-२ ही अच्छी डांट पिला देते थे, पर ढीठ विरोधी लोग तो उन डांटों को गन्ने का रस समझ कर ख़ुशी-२ पी जाते थे।

खैर, समय बीतता गया। हमारे वार्ड के लोगों ने कभी भी बदले की भावना नहीं रखी, और सभी सामाजिक कार्यों में पूर्ववत शामिली देते रहे। कई बार आपस में जरूर सम्बंधित अंदरूनी बातें चल पड़ती थीं। पंचायत का हठ तो इतना प्रबल था कि वह कई सालों तक रहा। बाद में भी जब-२ उन्हें हमारे वार्ड के लोगों के जाग जाने की गुप्त सूचना मिलती थी, वे चौकन्ने हो जाते थे, और पीठ पीछे हमारा विरोध करने लग जाते थे। बाद-२ में हमें खुद ही लगने लगा कि हमें उतने पानी की जरुरत नहीं थी, जितने पानी की हम ख्वाहिश रख रहे थे। सूक्ष्म सिंचाई का चलन आरम्भ हो गया था। पोलीहाऊसों व ड्रिप इरिगेशन की अनुदानित योजनाएं सरकारी पटल पर उभरनी शुरू हो गई थीं। उनके लिए तो वर्षा-जल संग्रहण से भी काम चल सकता था। फ्लड इरिगेशन का वह जमाना नहीं रहा था, जब एक खेत में पानी के पूरे तालाब को उड़ेल दिया जाता था। उससे पानी तो खाद-मिट्टी की ताकत लेकर पाताल लोक पहुँच जाता था, और फसल ऊपर-२ ही भूखी-प्यासी रह जाती थी। जिस पानी से सौ लोगों के खेतों की सिंचाई हो सकती थी, उसे एक ही प्रभावशाली आदमी हड़प कर बर्बाद कर देता था। वे दिखावे के धार्मिक बनते थे। बाद में उनका पूरा ध्यान एक बड़े से मंदिर के नवीनीकरण पर लग गया। वह तो ठीक था, पर विकास के अन्य काम भी नहीं रुकने चाहिए थे। उन्हें शास्त्रों की उन बातों की कोई परवाह नहीं होती थी कि पानी को मिल-बाँट कर प्रयोग में लाना चाहिए। तभी तो पुराने जमाने में कुँए, बावलियां आदि पानी के स्रोत सामूहिक होते थे। इसलिए हमें लगने लगा कि अगर उस इरिगेशन स्कीम का विरोध हुआ, तो वह अच्छा ही हुआ। भगवान् जो करता है, वह भले के लिए ही करता है। भगवान आदमी को ऊपर बढ़ाने के लिए ही समस्याएँ भेजता है। हालांकि हमारी वह सिंचाई योजना छोटी ही थी, और बाद में भी उससे सूक्ष्म सिंचाई की जा सकती थी। परन्तु जब हमारा काम वर्षा जल-संग्रहण से चल सकता था, तब हम क्यों खड्ड से पानी को ऊपर उठाने के लिए बिजली की मशीनों की व अन्य साजो-सामानों की फिजूल में बर्बादी करवाते। हमारे वार्ड के लोगों ने भी खेती की बजाय कमाई के अन्य विकल्पों पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया। उससे वे पढ़-लिख कर अच्छी नौकरियां व व्यापार करने लगे, जिससे उनकी आमदनी एक जाने-माने किसान से भी अधिक होने लगी। वैसा देखकर पूर्वोक्त विरोधी लोगों के फीके पड़े चेहरे देखने लायक होते थे।

तब तक नरेगा योजना का दूसरा फेस भी लोगों की समझ में आने लगा था। पहले फेस में तो इसका हमें पता ही नहीं चला। हो सकता है कि पहले फेस में कम बजट का प्रावधान था। दूसरे फेस में तो खुला बजट बंटता हुआ दिख रहा था। हरेक किसान को एक रेन हार्वेस्टिंग टैंक और एक खेत बनाने के साथ उसके पत्थर के डंगे के लिए वित्तीय सहायता देने का प्रावधान था। दोनों में से प्रत्येक के लिए अधिकतम 70 हजार रुपए की वित्तीय सहायता का प्रावधान था। नरेगा योजना के अन्तर्गत नियुक्त टीए/t.a. (तकनिकी सहायक/technical assistant) पंचायत में कार्यरत रहता था। वह हरेक काम का निरीक्षण करके उसकी लागत का अनुमान लगाता था, और उसी के अनुसार

पेमेंट करता था। किसी को 60 हजार, तो किसी को 50 हजार की पेमेंट होती थी। 70 हजार की अधिकतम राशि तो उत्कृष्ट कार्य के लिए ही स्वीकृत होती थी। हमने जो टैंक बनाया , वह लगभग 30 हजार लीटर केपेसिटी का था। उस पर 1 लाख बीस हजार रूपए का खर्च आया था। उसके लिए 70 हजार रूपए नरेगा से मिले, और शेष 50 हजार हमने अपनी जेब से लगाए। वास्तव में शुरू में काम के लिए सारा पैसा अपनी ही जेब से लगाना पड़ता था। कई बार मजदूरी (जॉब कार्डधारियों के बैंक अकाऊंट में हस्तान्तरित) के नाम पर थोड़ी पेमेंट बीच-२ में किश्तों में मिल जाती थी, यदि कागज पूरे होते थे तो, पर वह बहुत कम होती थी। उससे गरीब लोगों को खासी दिक्कत का सामना करना पड़ता था। उनके पास अपना पैसा होता नहीं था काम शुरू करवाने को। न ही कोई उन्हें उधार देता था, उनकी गरीबी को देखकर। क्योंकि जिससे पैसा वापिस लौटने की उम्मीद कम हो, उसे कोई आदमी कर्ज नहीं देना चाहता। बैंक भी तो अक्सर ऐसा ही करते हैं। इससे ऐसा होता था कि योजना का आधिकांश लाभ अमीर लोग ही ले पा रहे थे। होना यह चाहिए था कि शुरू में ही उन्हें योजना से पैसा मिल जाना चाहिए था, ताकि वे काम करवा पाते। फिर भी, बहुत से गरीब लोग इधर-उधर से जुगाड़ कर लेते थे। नरेगा योजना के अंतर्गत संसाधनों की बरबादी भी बहुत हुई। बहुत से लोग केवल योजना का पैसा बटोरने में ही लगे हुए थे, उन्हें काम से कोई मतलब नहीं होता था। वे दिखावे के लिए और बाहर-२ से लीपापोती करके अपने काम का अच्छा निरीक्षण करवा लेते थे। मुझे नहीं लगता कि वह कामचलाऊ संरचना काम करती थी। अगर काम करती थी, तो 1-2 साल ही उसके चलने की उम्मीद होती थी। बहुत से काम गुणवत्ता के पैमाने से काफी दूर होते थे। पानी के टैंक शुरू में ही लीक कर जाते थे। मैंने तो 10 टैंकों में से 2-3 टैंक ही ऐसे देखे, जो गुणवत्ता के मानकों पर खरा उतरते थे, और लीक नहीं करते थे। इसकी मुख्य वजह थी, लोगों के द्वारा सरकार द्वारा तय बजट में से अपने लिए नकद पैसे बचाने की कोशिश करना। यदि 70 हजार रुपए सरकार से प्राप्त करने होते थे, तो उसके अनुसार लगभग 35 हजार लीटर पानी की क्षमता वाला टैंक बनाना जरूरी था। तभी तकनीकी सहायक उसके लिए 70 हजार रुपए की राशि प्रदान कर सकता था, क्योंकि आगे उसकी भी जवाबदेही तय होती थी। सीधी सी बात थी कि इतनी क्षमता का गुणवत्तापूर्ण टैंक बनाने के लिए कम से कम 1 लाख 20 हजार रुपए की आवश्यकता पड़ती थी। हमने खुद इस आकार का टैंक इस रकम में बनवाया था, जैसा मैंने पहले भी बताया। अब अधिकाँश लोगों के द्वारा अपने पास का पैसा लगाना तो दूर, वे तो सरकार द्वारा देय 70 हजार रुपए में से भी कुछ पैसे अपने लिए बचाने की फिराक में रहते थे। वे लगभग 50-60 हजार रुपए लगाने के पक्ष में, और अपने लिए 10-20 हजार रुपए बचाने के पक्ष में रहते थे। अब आप ही सोचें कि यदि 1 लाख 20 हजार रुपए से निर्मित होने वाला टैंक 50-60 हजार रुपए में बनाया जाए, तो उसमें गुणवत्ता कहाँ से आ सकती है। इसलिए वे घटिया सामग्री का प्रयोग करते थे, उचित रेशो से कम सीमेंट का इस्तेमाल करते थे, घटिया निर्माण तकनीक का प्रयोग करते थे, अकुशल-सस्ते कामगारों की सेवा लेते थे, और तकनीकी सहायक को अपने वश में करने की कोशिश करते थे। कई नेता प्रकार के लोग तो ऊंची सिफारिशें भी लगवाते थे। बाहर से तो तकनीकी सहायक को वह टैंक भरा-पूरा दीखता था, पर वह अंदरूनी गहराई में ज्यादा नहीं जा सकता था। उसके पास एक ही समय में वैसे ही दर्जनों कामों की निगरानी की जिम्मेदारी होती थी। कई बार तो कुछ घोटालेबाज लोग पकड़ में भी आ जाते थे, जिससे वह उनके लिए देय राशि में कटौती कर देता था। पर जो गुणवत्ता गई, वह तो

गई। संसाधनों की भी जो बर्बादी होनी होती थी, वह भी तब तक हो चुकी होती थी। इससे सिद्ध होता है कि देश के विकास के लिए देश-प्रेम/समाज-प्रेम की भावना कितनी महत्त्वपूर्ण है। काम की घटिया गुणवत्ता के लिए दूसरा मुख्य कारण, जैसा मैंने पहले बताया है, काम के शुरू में सरकारी धनराशि का उपलब्ध न होना होता था। इससे लोगों को इधर-उधर से थोड़ी-बहुत रकम उधार लेकर काम चलाना पड़ता था। इससे भी गुणवत्ता में कमी रह जाती थी। तीसरी वजह यही थी कि काम के लिए बजट का निर्धारण कम रखा गया था। उस सीमित बजट में गुणवत्तापूर्ण काम नहीं हो सकता था। पहाड़ों में तो ऐसा असंभव ही था, क्योंकि पहाड़ों में वस्तु-निर्माण का खर्चा मैदानों की अपेक्षा अधिक होता है। अधिकाँश अतिरिक्त खर्चा तो दूरदराज के क्षेत्रों तक माल की ढुलाई के खर्चे के रूप में होता है। योजना में बेशक थोड़े ही कामों का प्रावधान होता, पर वे गुणवत्तापूर्ण होने चाहिए थे।

दोस्तों, जल की समस्या आज विश्व की मूलभूत समस्या है। हरेक परिवार को चलाने के लिए जल की विशेष भूमिका होती है। उसके बिना परिवार अधूरा लगता है। जल की जरूरत हरेक काम में पड़ती है। यहाँ तक कि स्वच्छतापूर्वक शौच जाने के लिए भी भरपूर जल चाहिए होता है। हमने तो कभी उसके लिए भी वर्षा जल संचय के बारे में नहीं सोचा था। ऐसा नहीं था कि हमारे परिवार में आर्थिक तंगी थी। पैसों की दरकार वाले बहुत से काम हमने करवाए, पर वर्षा जल संचय की तरफ कभी हमारा ध्यान ही नहीं गया। उसका हमने कभी महत्त्व ही नहहीं समझा। हम पानी के लिए पूरी तरह से सरकार के ऊपर आश्रित थे। नेताओं के सहयोग से बुजुर्गों ने एक छोटी सी उठाऊ पेयजल परियोजना लगवाई हुई थी। उसी से सब लोग अपना काम चलाते थे। उसका पानी पर्याप्त नहीं होता था, इसलिए लोग अक्सर शिकायत करते रहते थे। गर्मियों के दिनों में तो बहुत कम पानी छोड़ा जाता था। ज्यादा बारिश के दिनों में खड्ड के पानी में गाद की समस्या के कारण मशीनें बंद कर दी जाती थीं। कई बार मशीनें ख़राब पड़ जाती थीं। कभी पाईप टूट जाते थे। एक सबसे ऊंची पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा टैंक बना था, जहाँ तक लगभग 500 मीटर की सीधी उतराई की दूरी पर खड्ड से बिजली के पम्प द्वारा पानी चढ़ाया जाता था। उस टैंक से ग्रेविटी-पाईप के माध्यम से हरेक गाँव तक पानी पहुँचता था। पहले तो एक गाँव में एक ही नल होता था। बाद में हरेक परिवार अपने लिए निजी वाटर-कनेक्शन लेने लगा। उससे पानी की बर्बादी बढ़ गई, जिससे पानी की कमी और अधिक विकराल हो गई। आस-पास की पंचायतों की नजरें भी हमारी उस छोटी स्कीम के पानी पर पड़ी रहती थी। वे भी अपनी नेतागिरी लगाकर उस पानी को अपने यहाँ ले जाने की जुगत लड़ाते रहते थे। फिर तो हमारे लिए नाममात्र का ही पानी रह जाता। हैरानी की बात है कि वे आसपास की पंचायतें हमारे खड्ड के कैचमेंट एरिया में नहीं आती थी। इसका मतलब है कि उन पंचायतों में बरसा हुआ पानी हमारी खड्ड में नहीं आता था,बल्कि दूसरी खड्ड में चला जाता था। वे अपनी खड्ड से अलग से पानी चढ़ा सकते थे। वैसे भी उनके पास पहले से ही अपना काफी पानी मौजूद था। वे तो अपने खेतों की सिंचाई भी करते थे। फिर भी हमारे देश की राजनीति पता नहीं कब क्या करवा दे। इतना सब होने के बाद भी हमारी पंचायत के लोगों ने अपने घर-आँगन में एक भी वर्षा-जल संग्रहण टैंक नहीं बनवाया था। वे उसे पैसे की फिजूलखर्ची मानते थे। इस मामले में सरकारी योजना की तारीफ करना चाहूंगा। वह किसी विशेष महत्त्वपूर्ण काम के लिए होती है, जिसे लोगों ने ठन्डे बसते में डाला होता है। जब लोग उस योजना से हुए

काम के महत्त्व को समझते हैं, तब वे खुद भी शौक से व अपने खर्चे से उन कामों को करने लग जाते हैं। फिर सरकारी योजना की कोई जरूरत नहीं रहती, क्योंकि उसका मकसद पूरा हो चुका होता है।

दोस्तों, नरेगा योजना से मैंने दो टैंक बनवाए, एक अपने नाम से, और एक अपने भाई के नाम से। दोनों का राशन कार्ड अलग-२ था, इसलिए दोनों का परिवार अलग-२ माना गया। उस योजना से एक परिवार के लिए केवल एक वर्षा जल संग्रहण टैंक के ही निर्माण का प्रावधान था।

एक टैंक लगभग 30-35 हजार लीटर का था, जैसा मैंने पहले भी बताया है। वह हमारे घर के दरवाजे के बाहर ही बिलकुल आँगन में बना था। दरअसल, आँगन का वह स्थान दो अलग-२ परिवारों के बीच में था। वह मिट्टी व घास से भरा रहता था। बाकी दोनों तरफ का पूरा एरिया पक्का था। बच्चे भी वहां खेलते समय मटियामेल जैसे हुए रहते थे। वह स्थान मुझे टैंक निर्माण के लिए सर्वोत्तम लगा। वह जगह भी पक्की व पथरीली थी, इसलिए वहां बना टैंक कभी लीक न करता। परिवार के कुछ अन्य लोगों ने उसके नीचे एक कच्ची जैसी ढलानदार जगह पर टैंक निर्माण का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि उस पर बने टैंक की छत के ऊपर पशुओं को भी बंधा जा सकता था। तीसरे समूह ने खड़े ढाक में पत्थरों का दंगा लगवाकर टैंक बनाने का सुझाव दिया। काफी विचार-विमर्श हुआ। मैंने मकान के आँगन में टैंक बनाने के बहुत से फायदे गिनाए। यह भी बताया कि दोनों परिवारों के बीच बर्बाद हो रही जगह का सही इस्तेमाल हो जाएगा। सर्दियों में वहां अच्छी धुप आती थी, और गर्मियों में वहां ठंडी व मीठी हवा चलती थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि वह जगह दो तरफ से बिलकुल खुली हुई (बेरोक-टोक) थी, और तीसरी तरफ आधी खुली हुई थी। उसके आधे हिस्से पर दूसरे परिवार का मकान था। वहां से जो उरे-परे का खुला, रौशनी वाला और हरा-भरा नजारा दिखता था, वह उस जगह की एक अलग ही खूबसूरती थी। मुझे सबको समझाने के लिए बहुत बोलना पडा। अंततः सबने ख़ुशी-२ व बेझिझक मेरी सलाह मान ली। यही लोकतंत्र का तकाजा होता है। उस आँगन के कोने में एक रबर प्लांट का पेड़ था, जो आज भी है। वह आँगन के कोने में आज भी बहुत खूबसूरत लगता है। आँगन को ऊपर-२ से खोदने पर चारों तरफ उस देव-वृक्ष की जड़ों का बोलबाला था। वे जड़ें वहीँ तक जाल बनाती हुई सीमित थीं, जहां तक कच्ची मिट्टी थी। नीचे के पथरीले भाग में एक भी जड़ नहीं मिली। पथरीले भाग की जैसे-२ गहराई बढ़ती जा रही थी, वैसे-२ उसकी सख्ती भी बढ़ रही थी। झब्बल के एक बार के वार से खाने लायक मिट्टी निकालना भी मुश्किल हो गया था। हमें उसे खोदने के लिए गोरखा लेबर लगनी पड़ी। गोरखा एक जानी-मानी व बहादुर नेपाली बिरादरी है। 4-5 गोरखे पूरे दिन भर उसमें औजारों की टका-टक लगा रखते थे। उन्हें तो देखकर भी थकान होने लगती थी। लगता नहीं था कि टैंक की गहराई साढ़े छह फुट तक हो जाएगी, पर उन्होंने यह करके दिखाया। वैसे शुरू में हमने स्थानीय लोग भी काम पर लगाए थे, जिनके पास नरेगा के जॉब कार्ड भी थे। पर वे तो कुछ ही दिनों में हाथ खड़े करके भाग गए थे। फिर गोरखा लोगों को जॉब कार्ड होल्डर के बैंक अकाऊंट से पैसे निकलवा कर दिहाड़ी देनी पड़ी। जॉब कार्ड होल्डर की डेली अटेंडेंस लगा हुआ मस्ट्रोल हर महीने पंचायत में जमा करवाना पड़ता था। यह डर भी रहता था कि यदि कोई काम की इंस्पेक्शन पर आए, तो क्या जवाब देंगे। इसके लिए 2-3 जोबकार्ड होल्डर भी काम पर लगा कर रखने पड़ते थे, ताकि उन्हें दिखाया जा सके। मेरी दो चाचियां

और एक चाचा यह काम कर देते थे। वे आराम से काम पर लगे होते थे। उनके पास जॉब कार्ड थे। हर जगह यह समस्या आ रही थी। जोबकार्ड होल्डर अच्छी दिहाड़ी कमाने के लिए शहर चले जाते थे। नरेगा में बहुत कम दिहाड़ी थी। बिहार जैसे राज्य के लिए तो वह काफी थी, पर हिमाचल या पंजाब जैसे अधिक विकसित राज्य के लिए यह कम थी। वैसे बाद में थोड़ी सी बढ़ा भी दी गई थी, फिर भी वह नाकाफी थी। कई ठग किस्म के लोग टैंक-मालिक को अपने अकाऊंट से पैसे देते ही नहीं थे। कई कमीशन काट लेते थे। वैसे गाँव के भाई-बंधी के रिश्ते में ऐसा कम होता था। जॉब कार्ड होल्डर को साल के 150 दिनों का रोजगार मुहैया कराना सुनिश्चित किया जाता था। कईयों के बचे हुए 50 दिन इकट्ठे किए जाते थे, किसी के 40, तो किसी के 10 दिन। इस तरह से जितने जोबकार्ड-दिनों की जरूरत एक विशेष आकार के टैंक के लिए होती थी, उतने दिन पूरे करने पड़ते थे, तभी पेमेंट होती थी। हम तो जोबकार्ड-दिनों को इकठ्ठा करने के लिए अपनी मित्रमंडली के साथ गाड़ी में 10-10 किलोमीटर भी घूमे हैं। हर महीने वहां-२ ही मस्ट्रोल लेकर साईन करवाने भी जाना पड़ता था। कई लोगों को मनाना बड़ा मुश्किल होता था। कई लोग डरते थे। कई लोग इस आश्वासन को लेकर जोबकार्ड-दिन देते थे कि जब उन्हें किसी निर्माण कार्य की जरूरत पड़ती, तो हम उन्हें अपने जोबकार्ड-दिवस देते।

दोस्तों, जो जमीन घर के बाहर आँगन आदि की होती है, वह भूमि-रिकोर्ड में एक विशेष साझे खाते (अबादी देह) में आती है। खाता मुश्तरका भी साझा जमीन का ही खाता होता है, पर वह घर-आँगन से दूर खेत-खलिहानों को कवर करता है। वह जमीन किसी विशेष परिवार की मलकीयत नहीं होती। वह सभी परिवार वालों की साझी होती है। जिसका घर उसके सबसे नजदीक होता है, वह उसकी मानी जाती है। यदि बांटने की गुंजाईश हो, तो उसे आपस में बांटा भी जा सकता है। इसलिए पटवारी ने मौके पर जाकर छानबीन नहीं की। उसने दफ्तर में ही आँगन की जमीन का पर्चा-ततीमा मेरे परिवार के नाम बना कर दे दिया। काम शुरू होने पर पड़ौसी परिवार ऐतराज भी कर सकता है। हमारे एक पड़ौसी ऐसा चाहते हुए भी न कर सके, क्योंकि उस छोटी सी जमीन के बांटे जाने की गुंजाईश नहीं थी, और उनका घर उससे थोड़ा अधिक दूरी पर था। उन्होंने अपना घर बाद में बनवाया था। यदि वे चाहते, तो अपना घर कुछ अधिक दूरी पर भी बना सकते थे, हमारा आँगन छोड़कर, क्योंकि चारों तरफ उनकी लम्बी-चौड़ी जमीन थी। बाद में हमने कभी भी उन्हें अपने टैंक से पानी निकालने से नहीं रोका। इससे समाज में आपसी विशवास व सहयोग बढ़ता है।

दोस्तों, टैंक निर्माण के लिए उच्च गुणवत्ता के कच्चे माल का इस्तेमाल किया गया। पहाड़ी खदानों का रेता/बालू टिप्पर में मंगाया गया, जो नजदीक में ही उपलब्ध था। वह देखने में सुनहरा व सुन्दर होता है। उसमें मिट्टी नहीं होती। वैसे, नदी का रेता भी प्रयोग में लाया जा सकता है, पर वह धुला हुआ होना चाहिए, नहीं तो उसमें मिट्टी होने से वह कमजोर बन जाता है। पत्थर भी सबसे अच्छी पहाड़ी खदान से मंगाया गया। वह तोड़ी अधिक दूरी पर थी, पर ज्यादा नहीं। उसका पत्थर बहुत मजबूत और रंध्रदार (पोरस) जैसा था, जिसमें सीमेंट बहुत अच्छी पकड़ करता था। 10-12 किलोमीटर तक वे सड़क के रास्ते से टिप्पर पर ढोए जाते थे। कुल मिलाकर कोई लगभग 4-5 टिप्पर पत्थरों के ही लगे होंगे। सड़क से घर तक 1 किलोमीटर के रास्ते पर उन्हें खच्चरों से ढोया जाता था। खच्चरों के

कारण ढुलाई-भाड़ा बढ़ जाता था। बड़े-छोटे अनगढ़े पत्थर होते थे। गढ़े और चोकोर पत्थर तो बहुत महंगे मिलते हैं। ज्यादातर वे धनिक लोगों द्वारा आलीशान व सजावटी मकान बनाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। टैंक के लिए बने गड्ढे में टैंक-निर्माण का काम शुरू हो चुका था। सबसे पहले फर्श-निर्माण के लिए गटका डाला गया। गटका छोटे-२ (लगभग बंद मुट्ठी के आकार के) पत्थरों को कहते हैं, जिनकी लगभग आधा फुट की तह जमीन पर बिछाई जाती है। वे हमें पास के खेतों में ही बहुतायत में मिल गए थे। उसके लिए भी ज्यादा कच्चा पत्थर नहीं होना चाहिए। उनके ऊपर डालने के लिए कंक्रीट मिक्चर बनाया जाता है। उसके लिए लगभग 1:4:8 रेशो में क्रमशः सीमेंट, रेता और बजरी (रोड़ी/लगभग कंचे के आकार के पत्थर के अनगढ़े टुकड़े) पानी के साथ आपस में मिलाए जाते हैं। ये जितनी अच्छी तरह से आपस में मिक्स होंगे, और जितने कम पानी का प्रयोग किया जाएगा, कंक्रीट की मजबूती उतनी ही अधिक होगी। हालांकि पानी उतना तो होना ही चाहिए, जिससे उसे चिन्हित स्थान पर लगा कर अच्छी तरह से दबाया जा सके। अब वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि जरूरत से जितना ज्यादा पानी होगा, उतनी ही मजबूती उसकी कम हो जाएगी। ज्यादा पानी जब सूखता है, तब सीमेंट संरचना अन्दर से खाली/पोली रह जाती है। इस तरह, ठीक इम्पेकशन (दबाव) के बिना भी सीमेंट-संरचना अन्दर से रंध्रदार/पोली रह जाती है। यह बेसिक सी बात अधिकाँश मिस्त्रियों को पता नहीं होती। वे कंक्रीट की पतली कढ़ी बना देते हैं, ताकि उन्हें उसे सेट करने के लिए अपने हाथ से करंडी (कंक्रीट को मिक्स करने व दबाने के लिए बनी हेंडल वाली धातु की प्लेट) न चलानी पड़े।

दोस्तों, हमने पूरी गुणवत्ता का कंक्रीट मिक्चर बनाया, और उसे गटके के बीच में चारों तरफ पूरा घुसाकर सेट किया। याद आया, हमने उस फर्श को पक्का करने का काम अंत के लिए रखा। गटका भी हमने उसी समय, टैंक-निर्माण के अंत में ही बिछाया। टैंक की दीवार की चिनाई के समय बड़े-२ पत्थर उस गड्ढे में उंचाई से फैंकने पड़ते हैं, जिससे सीमेंट से पक्के किए हुए फर्श में सूक्ष्म क्रैक्स पड़ जाते हैं। उससे टैंक के लीक होने की संभावना बढ़ जाती है। अधिकाँश लोग शुरू में ही फर्श को पक्का कर देते हैं। शायद तभी लोगों के टैंक लीक कर रहे थे। हमने चौकोर आकार के कच्चे फर्श के चारों ओर के मार्जिन पर सवा दो फुट की खाली कंक्रीट की पटड़ी बनाई। उस पर लगभग 2 फुट चौड़ाई की दीवार की चिनाई शुरू की गई। उसमें से बाहरी लगभग डेढ़ फुट पर पत्थर की चिनाई की गई। अंदरूनी आधा फुट में सिंगल ईंट की दीवार चिनी गई। ईंट और पत्थर की दीवार के बीच में छोटी सी गली (लगभग 3 इंच चौड़ाई की) होती थी, जिसमें जीरी (कंक्रीट मिक्चर) को करंडी से ठूंस-२ कर भरा जाता था। उससे टैंक लीक-प्रूफ बन जाता था। कई बार समय के साथ पत्थर सीमेंट को छोड़ देता है, पर ईंट कभी नहीं छोड़ती। ईंट खुद टूट जाती है, पर सीमेंट को नहीं छोड़ती। बेशक ईंट भी पानी में जर (कमजोर, भुरभुरी होकर झड़ना) जाती है, पर लगभग 20-25 साल तो निकाल ही देती है। वैसा होने पर पुरानी ईंट को निकाल कर नई ईंट को उसी तरह लगाया जा सकता है। बीच में डाली गई जीरी का एक काम यह भी होता था कि यदि कोई पेड़ आदि की जड़ पत्थरों के बीच की दरार में से घुसकर अन्दर प्रवेश करने लगे, तो जीरी उसे अन्दर नहीं घुसने देती, क्योंकि उतने कम गैप में उसमें दरार नहीं पड़ सकती। वैसी भी कंक्रीट में बहुत मजबूती होती है। उसमें सीमेंट का रेशो भी कुछ ज्यादा रखा गया था। ऐसा ही तरीका हमने अपने 30 साल पुराने पत्थर से बने टैंक पर लागू किया था। वह अनजानी जगह से लीक कर रहा था। हमने उसकी भीतरी दीवार पर लोहे की टंकी (पत्थर पर छोटा गड्ढा बनाने वाला कीलनुमा औजार) से

छोटे-२ गड्ढे (लगभग औसत आकार, आधा बाय आधा सेंटीमीटर) कर दिए थे, ताकि उससे कंक्रीट चिपक सकता। फिर हमने उसी तरह उससे अन्दर की तरफ सिंगल ईंट की चिनाई की, और दोनों दीवारों के बीच का गैप कंक्रीट से भरा। उससे पानी लीकेज बिलकुल बंद हो गई, और टैंक नए जैसा बन गया। वह टैंक लगभग 1 लाख लीटर क्षमता का था, जिससे उस पर ऐसा करने से 50 हजार रुपए का खर्चा आया। वह पैसा पंचायत से किसी सरकारी योजना के तहत, बड़ी मुश्किल से, व प्रधान से बहुत मन्नत करने के बाद प्राप्त हुआ था। 1-2 अनभिज्ञ व ईर्ष्यालु प्रकार के लोगों ने तो रिपेयर के लिए उतने ज्यादा पैसे खर्च करने पर आपत्ति भी जाहिर की थी। पर यदि चार लाख से निर्मित होने वाले नए टैंक का काम पुराने टैंक ने पचास हजार में कर दिया, तो लाभ ही था। जो संसाधनों की बचत हुई थी, वह अलग। यह लगभग 2014-15 की बात है। इस पुस्तक के गिनाए सभी काम लगभग साथ-२ ही हुए थे। यही तरीका मैंने एक पशुपालक भाई को भी बताया था, जब मैं गौ-सेवा के काम से उसके घर पर गया था। उसका टैंक लीक कर रहा था, और वह उसे तोड़कर दुबारा बनाना चाह रहा था। जब मैंने अपना अनुभव उन्हें सुनाया, तो वे खुश हो गए, और अपने टैंक को तुड़वाने के खर्चे से बचाने के लिए बहुत धन्यवाद करने लगे। खैर, हमने अपने टैंक की 2 फुट की दीवार को घेरने के बाद कंक्रीट की पटड़ी से बचने वाली अतिरिक्त जगह खाली छोड़ दी थी (कुल चौड़ाई सवा दो फुट जो थी)। वह इसलिए ताकि फर्श की कंक्रीट को बाद में उसके ऊपर डाला जा सकता। उस कंक्रीट के वजन से फर्श उस पटड़ी से पूरी तरह से चिपक जाता, और लीक-प्रूफ बन जाता। कई लोग ऐसा नहीं करते। इससे दीवार और फर्श के बीच में कोने पर नाजुक जोड़ बन जाता है। टैंक में ज़रा सी भी हलचल होने से वह जोड़ कभी भी लीक कर सकता है। बड़ी तरतीब से दीवार की चिनाई की जा रही थी। पहले एक रद्दा (लगभग 1 फुट की ऊँचाई) पत्थर का चिना जा रहा था, फिर उतना ही ईंट का चिना जा रहा था। ईंट की दीवार पहले चिने जाने पर वह गिरते हुए टेढ़े-मेढ़े पत्थरों से टूट सकती थी। फिर दोनों के बीच में कंक्रीट भरा जा रहा था।

लगभग सारा ही टैंक भूमिगत हो गया था। केवल एक तरफ की मिट्टी की आधी, ऊपर वाली दीवार नहीं थी। वह खुली जगह वास्तव में एक विंडो/खिड़की का काम कर रही थी, जहाँ से टैंक-खुदाई से निकला मलबा बाहर निकला जाता था। बहुत ज्यादा मलबा निकला। वह पथरीला था। खेती के काम का नहीं था। मिट्टी में दबा हुआ मलबा ज्यादा नहीं लगता, क्योंकि वह हाई प्रेशर की टाईट पेकिंग में होता है। बाहर निकाले जाने पर तो वह खुल कर बहुत फैल जाता है। सौभाग्य से उस विंडो के नीचे खड्ड की ओर को खड़ी ढलान थी, जो हमारी ही अपनी मलकीती जमीन में थी। वह एक गाँव वाले के कब्जे में थी, जो कुछ समय पहले ही उनसे छूटी थी, पटवारी से जमीन की निशानदेही करवाने के दौरान। इसलिए टैंक-साईट से 30 फुट दूर रेहड़ी में ले जाकर मलबा उस ढाक की तरफ गिरा देते थे, जो सीधा खड्ड की तरफ चला जाता था। निचली तरफ हमने एक पत्थर का छोटा डंगा भी बनाया था, ताकि मलबा वहां रुक जाता, और ज्यादा जमीन को बर्बाद न करता, और खड्ड को भी ब्लॉक न करता। कई बार तो मलबे को डंप करना ही मुश्किल हो जाता है। कई बार तो उसकी लागत टैंक-निर्माण की लागत से भी ज्यादा आती है। टैंक के बन जाने पर हमने उस विंडो को भी उसी से निकले मलबे से भर दिया था। इससे टैंक पूरी तरह से अंडरग्राऊंड बन गया था। एक ध्यान देने योग्य बात है कि टैंक के अंतिम ऊपरी डेढ़-दो फुट की दीवार को पतला भी बनाया जा सकता है, यदि मेटीरियल या जगह आदि की कमी हो, क्योंकि कम गहराई में पानी का दबाव कम होता है। हमें

जगह की कमी के कारण एक दीवार के साथ ऐसा ही करना पड़ा था। वहां दीवार की चौड़ाई लगभग 1 फुट तक पहुँच गई थी।

दोस्तों, याद आया कि मैंने ग्रेजुएशन पूरी करके अपने गाँव आने के एकदम बाद वाटरशेड परियोजना में भी काम किया था। उस परियोजना में हमारी पंचायत भी शामिल थी। उसमें चैक डैम बनाए जा रहे थे। मैं आसपास के गाँवों के कम पढ़े नौजवानों के साथ गैंती और झब्बल (मिट्टी खोदने के औजार) चलाता था। लोग हैरान थे कि एक ग्रेजुएट नौजवान कितने शौक से जल संरक्षण के लिए कठिन परिश्रम कर रहा था। उसमें तालाब खोदे जा रहे थे, ताकि उसमें बारिश का पानी इकट्ठा होकर रिसता रहता, और जमीन के जलस्तर को बढ़ाता। इसी तरह, विभिन्न खड्डों के बीचोंबीच दीवारें बनाई गईं, जिन्हें चैक डैम कहते हैं। वे दीवारें (पत्थर के डंगे) पानी को रोक लेती थीं, जिससे वहां एक कच्चा तालाब जैसा बन जाता था। उससे भी पानी जमीन में रिसता, जिससे भूमिगत जलस्तर बढ़ता। मैंने लोगों के साथ 3-4 चैक डैम बनाए और एक बड़ा तालाब बनाया। देशभक्ति और जल-संरक्षण के लिए जूनून से ही वैसा संभव हो पाया था। हालांकि हमें उस सरकारी प्रोजेक्ट की तरफ से न्यूनतम दिहाड़ी/पारिश्रमिक भी मिल रही थी। हर महीने मस्ट्रोल पर हम हस्ताक्षर करते थे, तब पेमेंट होती थी। फिर लोगों के बीच में आपसी सहयोग घटने लगा। कुछ अति महत्त्वाकांक्षी और नकारात्मक प्रकार के लोग एक-दूसरे पर नेतागिरी करने के और पैसा हड़पने के आरोप लगाने लगे। काम की गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इससे वह योजना वहीँ तक सीमित हो गई। हालांकि कुछ समय बाद उसका टेन्योर ख़त्म हो जाने पर वह योजना खुद ही बंद हो गई। हमारी पंचायत ने उसका काम ही टेन्योर के अंत के करीब शुरू करवाया। बेशक उसके कई सालों बाद हमारे वार्ड के वार्ड-पंच ने उस चैक डैम बनाने के काम को नरेगा योजना के अंतर्गत संभाला। उससे कुछ लाभ तो हुआ, पर पूरा नहीं। उन कामों में भी गुणवत्ता व सूझ-बूझ की कमी झलकी। इससे लोग उसका विरोध करने लगे। वह लोगों के खेती के क्षेत्र से दूर नदी की तरफ चैक डैम बना रहा था। शायद उस तरफ जमीन में पत्थरों की अच्छी उपलब्धता थी। वह कह रहा था कि उससे नदी में जलस्तर बढ़ेगा, और नीचे वाले क्षेत्रों को फायदा होगा। वह कह तो ठीक रहा था, पर लोगों को आपत्ति थी कि उनके क्षेत्र को छोड़कर केवल दूसरे क्षेत्रों को ही क्यों पानी उपलब्ध कराया जाता।

खैर, उस भूमिगत टैंक का निर्माण जोरों-शोरों से व चारों तरफ खुशहाली के साथ चल रहा था। ऐसे भूमिगत टैंक को चारों तरफ की मिट्टी अच्छा सहारा देती है। क्योंकि कच्चे गड्ढे की दीवारों की मिट्टी कहीं कम उखड़ी होती है, तो कहीं ज्यादा; इसलिए टैंक की दीवार व गड्ढे की दीवार के बीच में हमने गटके की अच्छी पैकिंग कर दी, ताकि कोई गैप खाली न रहता । गटकों को हमने कंक्रीट मिक्चर डालकर पक्का कर दिया। इससे टैंक को चारों ओर की भूमि का अच्छा ढासना/सपोर्ट मिल गया। भूमिगत टैंक में तो सिंगल पत्थर की दीवार ही काफी होती है। भूमि के ऊपर के टैंक को डबल पत्थर की दीवार देनी पड़ती है, क्योंकि वहां कोई गड्ढे की दीवार तो होती नहीं, जो गटके (पत्थर के टुकड़ों) को पैक कर सके। कई लोग भूमिगत टैंक में भी डबल पत्थर की दीवार लगाते हैं। वह इसलिए, ताकि यदि कभी चारों तरफ की भूमि को खोदकर टैंक का मकान बनाना हो, तो दीवार सही-सलामत रह सके। नहीं तो खोदते समय छोटे-२ गटके के पत्थर निकलते रहते हैं, जिससे दीवार गायब ही हो जाती है। इसी तरह कई लोग अपने

आँगन में खाली कंक्रीट का फर्श नहीं बिछाते, बल्कि कंक्रीट के साथ सरिया बिछा कर आरसीसी का फर्श बिछाते हैं। उसके बाद चारों कोनों में एक-२ पिलर/स्तम्भ गाढ़ देते हैं। फिर कभी यदि उन्हें भविष्य में टैंक का मकान बनाने की जरूरत पड़े, तो वे उसके नीचे की मिट्टी खोदकर आराम से बना सकते हैं। वह फर्श फिर लेंटर/छत का काम भी करने लगता है।

मित्रो, टैंक की दीवार पूरी बन चुकी थी। फिर लेंटर डालने का दिन आया। उसके लिए लकड़ी की शैटरिंग चाहिए थी। मिस्त्री जी ने छोटे-२ पेड़ काटने को कहा। हमें इससे पर्यावरण की हानि लगी, क्योंकि एक बार के प्रयोग के लिए बहुत से वृक्ष बली चढ़ जाते। इसलिए हमने इधर-उधर से शैटरिंग इकट्ठी कर ली। कुछ शैटरिंग किराए पर ले ली। हमारे गाँव में लेंटर डालने के लिए बुवारे की रिवाज थी। इसमें आसपास के लोग इकट्ठा होकर श्रमदान करते थे, और शाम को सबके लिए अच्छे और ताकतवर व्यंजन बनते थे। पर वह प्रथा कुछ कम होने लगी थी। इसलिए हम परिवार के 4-5 ताकतवर सदस्य ही इकट्ठे हुए। उस दिन बहुत ताकत लगती है। कंक्रीट को तसलों में अकेले या खाली बोरियों की सतह पर दो आदमी के द्वारा पकड़ा जा कर ढोना पड़ता है। जहां पर कंक्रीट मिलाया जाता है, वहाँ से उठाकर मिस्त्री तक पहुँचाना पड़ता है। 4-5 मजदूर (नेपाली गोरखे) तो हमारे पास पहले से उपलब्ध थे ही। मैंने अपने सामने सारा पूरा कंक्रीट मिक्चर बनवाया। पानी जरूरत से ज्यादा नहीं डालने दिया। हालांकि कई लोग मेरी रोका-टोकी से खफा भी हुए थे। मुझे उच्च गुणवत्ता के बदले में वैसा भी मंजूर था। मिस्त्री जी ने एक कमी यह रखी कि सरिये के जाले को शटरिंग कब फट्टों के कुछ ऊपर नहीं फिक्स किया। वैसा जगह-२ पर उनके नीचे पत्थर के टुकड़े फंसा कर किया जाता है। इससे सरिया फट्टों से चिपका रह गया। कंक्रीट की तह ऊपर रह गई, और सरिये का जाला नीचे। पूरी मजबूती के लिए सरिये का जाल कंक्रीट की तह के बीचोंबीच आना चाहिए। दूसरी कमी यह रही कि सीमेंट वाला पानी नीचे न चोए, उसके लिए कई जगह पर प्लास्टिक की शीट बिछाई गई। शायद मिक्चर में पानी कई जगह पर ज्यादा पड़ गया था। बाद में उस शीट को निकालने में काफी दिक्कत आई। कई जगह से तो वह निकाली ही नहीं जा सकी। उससे टैंक की छत की निचली सतह में पलस्तर चिपकाने में काफी परेशानी आई। ऐसी छोटी-२ कमियां अधिकाँश स्थानों पर रखी जाती हैं, जिससे गुणवत्ता का बुरी तरह से भट्ठा बैठ जाता है। ऐसी ही एक कमी क्योरिंग की रखी जाती है। जमे हुए कंक्रीट की, पानी से 2-3 हफ्ते तक सिंचाई को क्योरिंग कहते हैं। कयोरिंग की हर जगह अनदेखी की जाती है। अधिकाँश अनपढ़ मजदूर वर्ग के लोग तो उसकी महत्ता समझते ही नहीं, पर अधिकाँश पढ़े-लिखे लोग भी इसमें बड़ी लापरवाही बरतते हैं। सीमेंट की अधिकाँश संरचनाओं में जो कमजोरी रहती है, वह सामग्री की गुणवत्ता या उसकी मात्रा की कमी से नहीं, अपितु क्योरिंग की कमी से होती है। ऐसी लापरवाही सरकारी विभागों में ज्यादा देखी जाती है। नवनिर्मित सीमेंट-संरचना को क्क्योरिंग से 25 परसेंट मजबूती पहले तीन दिन में, 50% पहले हफ्ते में, 75% दूसरे हफ्ते में, और 90% तीसरे हफ्ते में प्राप्त होती है। उसके बाद 10% की शेष मजबूती अंतिम चौथे हफ्ते में व धीरे-२ कई सालों तक बिना क्योरिंग के ही मिलती है। 100% मजबूती पांच साल में प्राप्त होती है। एकबार मैंने लोकनिर्माण विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी से इस लापरवाही के मामले में जवाब माँगा था, तो उन्होंने भी यह कहकर टाल दिया था कि एक हफ्ते की ही क्योरिंग काफी होती है, उसके बाद खुद होती रहती है। पूरी मजबूती प्राप्त करने के लिए तो तीन हफ्तों तक क्योरिंग होनी चाहिए। पर

यदि दो हफ्ते भी दी जाए, तो भी काम चल सकता है। यहाँ तो हाल यह है कि अधिकाँश मामलों में एक हफ्ते तक भी क्योरिंग नहीं की जाती, जो निहायत ही जरूरी है। हमारे देश के संसाधनों की बर्बादी में क्योरिंग की कमी भी एक मुख्य वजह है। मुझे तो सीमेंट-संरचना के निर्माण के बाद छुटपुट मामलों को छोड़कर क्योरिंग करते हुए कोई नहीं दिखता। क्योरिंग की जिम्मेदारी सब एक-दूसरे पर डालते रहते हैं, और अपना पल्ला झाड़ते रहते हैं। क्योरिंग के झंझट से बचने के लिए बरसात के मौसम में निर्माण-कार्य करवाना ठीक रहता है। क्योरिंग शुरू से होनी चाहिए, क्योंकि एकबार भी सीमेंट के सूख जाने पर उसकी मजबूती वापिस नहीं आती।

दोस्तों, मैंने टैंक-निर्माण के समय सभी संरचनाओं पर पूरे 4 हफ्तों तक नमी को बरकरार रखा। लेंटर डालते समय तेज गर्मी पड़ रही थी। इसलिए मैं उसे गीले जूट के बोरों से ढक कर रखता था, और ऊपर से उन्हें सस्ती पोलीथीन शीट से भी ढक देता था। पानी की कमी थी, नहीं तो लेंटर पर छोटे-२ कम्पार्टमेंट बनाकर उन्हें पानी से भर कर रखता, और ढके बिना खुला छोड़कर रखता। मैं तो टैंक की दीवारों पर भी जूट के गीले बोरे लटका कर रखता था, ताकि उन पर लगातार नमी बनी रहती। यही कारण था कि टैंक को बने हुए लग्भग 7-8 साल हो गए हैं, पर उसमें अभी तक लीकेज की कोई जानकारी नहीं मिली है। ऐसे छोटे-मोटे सभी काम मुझे स्वयं करने पड़ते थे, क्योंकि गुणवत्ता के मामले में सभी लोग बड़ी-२ आँखें करके झाँकने लगते थे। मिस्त्रीजी तो लेंटर की निचली सतह पर पलस्तर करने को भी टाल गए थे। उनका कहना था कि टैंक में पानी का जलस्तर नीचे रखा जाएगा, जिससे लेंटर का सरिया जंग नहीं खाएगा। पर वे यह नहीं मान रहे थे कि पानी की भाप से भी तो सरिया गीला हो ही जाएगा। शायद वे टैंक के अन्दर की तंगी में काम नहीं करना चाह रहे थे। फिर एक कामचलाऊ मिस्त्री से लगभग दोगुने पैसे देकर वह काम कराया गया। फिर टैंक संपूर्ण हुआ, जिसे देखकर रुह खुश हो जाती थी। बिना पलस्तर की सतह के सुराखों में तो कीड़े-मकोड़े अपना घर बनाते। लेंटर पड़ने के बाद 3-4 दिन तक हम उस पर आराम से चलते थे, क्योंकि उस समय वह कच्चा होता है। शुरू के 12 घंटे तक उसकी सिंचाई नहीं करनी चाहिए, नहीं तो मैंने देखा कि उसकी ऊपरी सतह पपड़ी की तरह निकल जाती है, कई स्थानों पर। खैर, 1 महीने बाद लेंटर की शैटरिंग खोल दी गई थी। एक कोने पर उसमें लगभग 2 फुट बाय 2 फुट का चोकोर सुराख रखा गया था। वह साफ-सफाई के लिए अन्दर-बाहर जाने के लिए और शैटरिंग को टैंक से बाहर निकालने के लिए था। उसके ढक्कन की लोहे की फ्रेम हमने शुरू में ही सरिये के साथ बाँध दी थी। उसमें चारों ओर बहुत से होल्डफास्ट (लोहे के कुंडे जैसे) सही दिशा में वैल्ड कर दिए थे। इससे उन्होंने सरिये को अच्छी तरह से जकड लिया था। लेंटर की कंक्रीट पड़ने पर वह फ्रेम सदा के लिए पक्की हो गई। ढक्कन के लिए हमने वैसी ही व उसी आकार में फ्रेम बनाई, जिसमें उरे से परे तक बहुत सी लोहे की छड़ें वैल्ड थीं। उसको प्लास्टिक शीट पर रखकर मैंने कंक्रीट (सीमेंट का भाग ज्यादा) डाला, तो वह आरसीसी का ढक्कन बन गया। ऊपर की तरफ का हल्का सा डोम शेप बनाया, ताकि उस पर चलने में दिक्कत न आती, ठोकर न लगती, और ढक्कन की पोजीशन का पता भी स्पष्ट चला रहता। उस पर खोलने के लिए कुंडा नहीं लगाया, नहीं तो शरारती लोग व बच्चे बार-२ उसे खोलते रहते हैं। उससे दुर्घटना की भी संभावना बढ़ जाती है। कंक्रीट की वजह से भी वह बहुत भारी होता है, जिससे उसे बच्चे उठा भी नहीं सकते। जब कभी बिरले मामले में उसे खोलने की जरूरत पड़ती थी, तब हम उसकी फ्रेम में गैंती (खोदने वाला औजार) फंसा कर उसे खोल देते थे। इसी तरह, हमने घर की

तरफ वाले एक कोने पर एक बड़ा सुराख रखा, जिसमें रेन वाटर हार्वेस्टिंग चैंबर से आ रहा 2 इंच का पाईप घुस जाता। एक 1 इंच का सुराख़ हमने तीसरे कोने में भी रखा, ताकि उसमें जल विभाग के नल से आ रही पतली काली पाईप घुस जाती। इससे अतिरिक्त जल का संग्रहण हो जाता था। वेल्डर से एक लोहे की प्लेट लाया, जिसमें बीच में सुराख था। उसमें कील से लकड़ी का गुटखा जोड़ा। उससे उस सुराख़ का ढक्कन बन गया। मेरा नन्हा सा बेटा घुटनों के बल रेंगता हुआ वहां आता, उसको बाहर निकालकर उसका गहराई से मुआयना करता, और फिर उसे दूर फ़ेंक देता। फिर वह उस सुराख में अंगुली डाल कर खेलता रहता। धीरे-२ वह टूट कर गुम ही हो गया। फिर घर की बूढ़ी अम्मा उसमें कपड़े की गुदड़ी घुसा कर रखती। एक आधे इंच आकार का सुराख खड्ड की तरफ ओवरफ्लो के लिए रखा। वह लेंटर के बिलकुल नीचे था। हालांकि कभी हमने इतना पानी होने ही नहीं दिया कि वह ओवरफ्लो हो पाता। दादी अम्मा उसमें जालीदार कपड़ा बाँध कर रखती, ताकि सर्प आदि जीव अन्दर न घुसता। वैसे उन सुराखों से गर्मी में बनी हुई भाप भी बाहर निकलती रहती है, जिससे टैंक के अन्दर दबाव नहीं बढ़ता। वैसे टैंक लीक होने का एक कारण यह है प्रेशर की भाप भी हो सकती है। मुख्य कारण तो उसमें ऊँचाई से गिरता हुआ पानी होता है। कई बार पानी के गिरने का कम्पन टैंक में पैदा हो रहे कम्पन के समान होकर उसके ऊपर चढ़ जाता है। इसे अनुनाद/resonance कहते हैं। इससे टैंक बहुत तेजी से कांप सकता है, जिससे सूक्ष्म क्रैक पैदा होकर लीकेज कर सकते हैं। इसलिए अच्छा रहता है, यदि पानी छोड़ने वाली पाईप फर्श के पास हो, ताकि वह हमेशा पानी में डूबी रहे। इसी तरह टैंक में तैराकी करने वालों से भी ऐसा ही महाकम्पन पैदा हो सकता है। एक आदमी जब पानी के टैंक में छलांग लगाता है, तब टैंक पर बहुत ज्यादा दबाव पड़ता है। तैराकी से समस्या खुले टैंक में आती है, क्योंकि खुले टैंक में ही लोग तैरते हैं। वैसे तो मिस्त्रीजी कहते थे कि ऐसा कुछ नहीं होता, पर सावधानी में ही सुरक्षा छिपी है। खुले टैंक को कवर भी करना पड़ता है, ताकि उसमें दुर्घटनावश कोई घुस न जाए। बच्चे, व कुत्ते तो विशेष शिकार होते हैं। हमने एक खुले टैंक पर क्रेट वायर की फेंसिंग की थी। वह लगभग 10-20 हजार रूपए की पड़ी। टैंक का आकार लगभग 24 फुट बाय 18 फुट था। लगभग 3 फुट की ऊँचाई का तार का जाला था। वैसे अढ़ाई फुट से भी काम चल जाता। कई बार हमने खुद उसमें घुसे हुए ज़िंदा कुत्ते बाहर निकाले थे।

दोस्तों, उस टैंक को बनाते समय उसके फर्श पर भी एक 1 इंच की पाईप बाहर को, खड्ड की तरफ को फिक्स की थी। उस सुराख तक चारों तरफ से हलकी उतराई/स्लोप थी, जिससे सफाई करते समय पानी वहां इकट्ठा हो जाया करता। लगभग 7-8 साल हो गए, हमें तो सफाई की व उस पाईप की जरूरत नहीं पड़ी। दोस्तों, याद आया, टैंक की अंदरूनी सतह की फाईनल सीमेंट-फिनिशिंग के बाद हमने उसमें एक फुट लेवल तक पानी भर दिया था। वह पानी खुला और गंदा था। उसे हमने एक खुले टैंक से टुलू पम्प से उठाया था, जो नीचाई पर था। उससे ऐसा होता है कि क्योरिंग होने के साथ-२ टेम्प्रेचर फ़्लक्चुएशन नहीं होता। रात-दिन को तापमान एक जैसा बना रहता है। उससे गर्म-सर्द से बनने वाले सूक्ष्म क्रैक नहीं पड़ते, जिससे लीकेज नहीं होती। वैसे भी टैंक कभी खाली नहीं रहना चाहिए। उसमें कम से कम 1-2 फुट पानी तो हमेशा ही रहना चाहिए। इसीलिए हमने टैंक से बाहर निकलने वाली आधे इंच की पानी भरने की पाईप को टैंक के अढ़ाई फुट के लेवल पर टैंक की दीवार में फिक्स कराया था। वैसे वह 2 फुट पर होती, तो ज्यादा बेहतर होता। पूर्वोक्त डेढ़ फुट की ड्रेनेज पाईप के लिए बाहरी गेट वाल्व हमने कंपनी का व अच्छे

पीतल का लिया। वह लगभग 500 रुपए में आया। देसी वाल्व अक्सर खराब होते रहते हैं। पाईपें लीकेज के लिए अच्छी तरह से चैक कर लेनी चाहिए। यदि मिट्टी के अन्दर दबाने के बाद पाईप लीक करती हुई पाई गई, तो उसे बदलने के लिए बहुत मेहनतकरनी पड़ेगी। हमें अपनी पाईप के लीक होने का पता बाद में चला। पर खुशकिस्मती से वह मिट्टी में दबे हुए हिस्से के बाहर लीक हो रही थी। लीकेज वाले हिस्से से नल तक पूरा पाईप काट कर, टैंक से आ रही पाईप पर नया पाईप जोड़ दिया गया। बाद में गर्मी का मौसम बीत जाने पर और बरसात शुरू होने पर हमने उस टैंक के उस गंदे पानी की निकासी ड्रेनेज पाईप के रास्ते से उसी पुराने टैंक के अन्दर को कर दी, जिससे वह पानी ऊपर उठाया था। इसके लिए हमने ड्रेनेज पाईप के गेट वाल्व को घेरता हुआ छोटा सा सीमेंट-ईंट से चैंबर (1 फुट बाय 1 फुट बाय 1 फूट) बनाया था, जिसमें भी निकासी पाईप के लिए धरातल से थोड़ा ऊपर एक सुराख़ था। वह इसलिए उसके फर्श से थोड़ा ऊपर था, ताकि कोई मोटी चीज नीचे बैठ जाती, और पाईप में घुसकर उसे ब्लॉक न करती। हमने चैंबर के सुराख के बीचोंबीच एक लोहे की दो कीलें फंसा दी थीं। उससे पाईप में किसी मोटी चीज के फंसने की संभावना नहीं थी। बच्चे भी तो शरारत करते हुए उसमें गेंद वगैरह फंसा सकते थे। पर उन कीलों में पानी के साथ आए हुए पत्ते फंसने लगे, जिससे पानी आगे जाना बंद हो जाता। मैं भरी बारिश में भीगते हुए उन पत्तों को बाहर निकालता, ताकि खड़ा पानी चालू होकर टैंक में घुस सके। इसलिए हमने एक कील उखाड़ दी, जिससे सुराख केवल दो बराबर हिस्सों में बंटा रहा। उससे कोई समस्या नहीं बची। छेद का आकार निकासी पाईप के अनुसार लगभग दो इंच का था। ऐसा हमने सभी चैम्बरों के साथ किया।

दोस्तों, अब आँगन में बने टैंक में छत के पानी को इकट्ठा करने की बारी थी। हमारा घर लेंटर की छत वाला था। उसका पूरा क्षेत्रफल लगभग 50 स्क्वायर मीटर का होगा। हमने उन कोनों की निशानदेही की, जहां पर वर्षा का पानी इकठ्ठा होता था। ऐसा हमने बारिश के बीच में देखा। वैसे दो कोने हमने चिन्हित किए, जहाँ पर लगभग 80% छत का पानी इकठ्ठा होता था। बाकी 20% पानी इधर-उधर चला जाता था। उसको हमने बाद में कैप्चर करना था। उन चिन्हित दो कोनों पर हमने लेंटर में छेद किया। छेद लगभग 2 इंच का गोलाकार था, जिसमें प्लास्टिक का 2 इंच का आम उपलब्ध रूफ वाटर ड्रेनेज पाईप फिट हो जाता। वह पाईप सीधा दीवार के पूरे कोने को छूता हुआ नीचे आता था, और धरातल पर एक चैंबर में ख़त्म होता था। उस चैंबर के आऊटलेट छेद से 2 इंच के पाईप का टुकड़ा फिट कर दिया जाता, जो सीधा टैंक के अन्दर जा कर ख़त्म होता था। हमने यह गलती की कि टैंक की दीवार में लेंटर के नीचे चिनाई के समय एक छेद नहीं रखा था। यदि वैसा होता, तो वह पूरा पाईप अन्डरग्राऊंड हो सकता था। इसलिए हमें टैंक के लेंटर के कोने में बाद में ऊपर से छेद करना पड़ा, जिससे वहां पाईप का हिस्सा बाहर को रहकर अजीब सा लगता था। खैर, फिर आदत हो गई थी। हमने तो टू वे सिस्टम बनाया हुआ था। उसी चैंबर में एक और छेद था, जिससे नीचाई पर स्थित पूर्वोक्त गंदे पानी के टैंक से आया हुआ अंडरग्राऊंड पाईप जुड़ा होता था। उस छेद को हम खुला रखते थे, ताकि सारा पानी नीचे चला जाया करता। हम थोड़ी देर बारिश होने दिया करते, ताकि लेंटर की गन्दगी (धूल, चिड़िया की बीट, पत्ते आदि) बहकर गंदे पानी के टैंक को चले जाया करते। फिर हम उस छेदको बंद करते थे। उससे चैंबर में पानी ऊपर उठकर ऊपर वाले छेदके पाईप से होकर आँगन के शुद्ध पानी के टैंक को चला जाया करता था। वैसे हम उसमें बीच-२ में ब्लीचिंग पाऊडर भी डाला करते थे। वैसे ज्यादातर हम चूने

पर ही भरोसा करते थे। चूना सेहत के लिए सुरक्षित भी है, और सभी कीटाणुओं को मारकर पानी के मैल को भी नीचे बैठा देता है। तीस-पैंतीस हजार क्यूबिक फीट के, भरे हुए टैंक के लिए लगभग आधा किलो चूना काफी होता है। उसे हम बाहर ही, पानी की बाल्टी में घोलकर उस बाल्टी को टैंक में उड़ेल देते थे। कहते हैं कि बिना फ़िल्टर किए हुए पानी की गन्दगी से रिएक्शन करके ब्लीचिंग पाऊडर कैंसर पैदा करने वाले तत्त्व बनाता है, जो भाप से होकर साँसों से भी हमारे शरीर में घुस जाते हैं। खैर, उस आँगन के टैंक के चैंबर के बाहर से भी एक 2 इंच की प्लास्टिक पाईप गुजरती थी। वह छत के एक गंदे पानी वाले कोने के चैंबर से आती थी। वह सीधी गंदे पानी वाले टैंक को जाती थी। उसको हमने टी-जवाईंट से चैंबर के निचले छेद से जोड़ दिया था। इस प्रकार से, एक ही पाईप से दोनों चैम्बरों का पानी गंदे पानी वाले टैंक को ग्रेविटी से चला जाता था।

दोस्तों, इसी तरह मेरे पड़ौसी चाचा के चद्दर वाले छत से एक अन्य चैंबर में पानी इकट्ठा होता था। ऊपर बताई गई गंदे पानी वाली साझी पाईप उस चैंबर में खुलती थी। उस चैंबर से अकेली पाईप गंदे पानी के टैंक तक जाती थी। वह पाईप सबसे लम्बी (लगभग 30 मीटर लम्बाई) थी। ऊपर बताई गई दोनों अंडरग्राऊंड पाईपें छोटी थीं, जो लगभग 5-10 मीटर के पाईप के टुकड़े थे। इस प्रकार से गंदा पानी दो चैम्बरों से छोटी पाईपों के माध्यम से इकट्ठा होकर तीसरे सामूहिक चैंबर तक जाता था, जहाँ से तीनों छतों का गंदा पानी अकेली लम्बी पाईप से होकर गंदे पानी के टैंक तक पहुँचता था। वह बहुत खूबसूरत सिस्टम था, और सभी लोग उसकी तारीफ करते रहते थे। वैसे, में भी उसे परिवार के और पड़ौसियों के प्रेमपूर्ण सहयोग से ही बना पाया था। इस प्रकार से हम वर्षा के जल की एक-२ बूँद को संचित करने का प्रयास करते थे। यही वर्षाजल संग्रहण का मुख्य उद्देश्य है।

दोस्तों, इस तरह बारिश का सारा गंदा पानी और अतिरिक्त रूप से उपलब्ध साफ पानी उस नीचाई वाले पूर्वोक्त गंदे पानी के टैंक में इकट्ठा हो जाता था। वहां से मैंने खेत तक पानी पहुंचाने के लिए खुद प्लास्टिक की पाईप को जोड़ा। प्लास्टिक के पाईप की मनमर्जी की फिटिंग करना बहुत आसान होता है। मैंने अपने उस टैंक से दोनों पोलीहाऊसों तक प्लास्टिक के पाईप बिछाए व फिट किए। पाईप का जो हिस्सा टैंक में होता था, उस पर गर्म करके तारें घुसा दी थीं, जिससे वहां तारों का जाल बन गया था। उसके ऊपर एक पतली जाली और बाँध दी थी। इससे टैंक की गन्दगी से पाईप ब्लॉक नहीं होता था। वैसे भी हम पाईप को टैंक के फर्श से लगभग कम से कम आधा से एक फुट ऊपर रखते थे, ताकि वह गाद न खींचता। साईफनिंग/स्वयं-चुसाव से पानी का चुसाव खुद होता था। जहाँ पर प्लास्टिक पाईप में जोड़ लगाना होता था, वहां उसके अन्दर उचित मोटाई का लोहे का पाईप फिट किया जाता था। नल वगैरह की अतिरिक्त फिटिंग उस लोहे की पाईप के ऊपर की जाती थी। उन्हें गर्म करके एक दूसरे के ऊपर चढ़ाया जाता था। मैं तो होज क्लैम्प/hose clamp का भी इस्तेमाल करता था, उन्हें आपस में जोड़कर लीकप्रूफ बनाने के लिए। सारा पाईप मिट्टी में दबाया गया था, ताकि धूप व गर्म-सर्द से खराब न होता।

दोस्तों, अब विविध वर्षाजल संग्रहण टैंकों के निर्माण से हमारे इलाके में खूबसूरती, दृढ़-विश्वास, दृढ़-निश्चय और परस्पर सहयोग की भावना से भरी हुई नमी चारों ओर फैल गई थी। लोग उस सिस्टम से जाने-अनजाने प्रेरणा ले रहे थे। हमारा आँगन का टैंक उस सरकारी वर्षाजल संग्रहण की योजना का सर्वश्रेष्ठ टैंक आंका गया। उसके लिए

हमारी पंचायत को सम्मान/ईनाम भी मिला। हमारे गाँव का पूर्ववर्णित सूखापन नष्ट हो गया। हमारा गाँव सरस व संतुलित हो गया था। गाँव के लोगों के मन से भी रूखापन काफी हद तक हट गया था। सभी लोग सरस, सरल, कोमल, व मीठे व्यक्तित्व के धनी बन गए। कुछ न कुछ हरी-भरी साग-सब्जियां पूरे वर्ष भर खाने को मिलतीं। उनमें मेथी, धनिया, मूली, मटर, सरसों, खीरा, कद्दू, लौकी, शिमला मिर्च, टमाटर आदि प्रमुख थीं।

इसी तरह, जैसे मैंने पहले भी बताया कि नरेगा के अंतर्गत ही दूसरा व कुछ छोटे आकार का टैंक (लगभग 20-25 हजार लीटर का) घर के आँगन वाले टैंक से लगभग 30 मीटर सीधी नीचाई व 100 मीटर की दूरी पर बनाया गया। जैसा कि मैंने पहले भी बताया (केंचुआ खाद वाले भाग में) कि उसमें ढलान पर बहता हुआ बारिश का पानी इकट्ठा किया जाता था। इससे उसका पानी पास ही के खेत में और साथ में बने केंचुआ खाद यूनिट में सिंचाई के काम आता था। पर जो साथ में खेत था, वह उससे थोड़ी सी ही नीचाई पर था। इसलिए आधे से ज्यादा टैंक खाली हो जाने पर वहां तक ग्रेविटी से पानी जाने में कुछ दिक्कत होती थी। उस टैंक के लिए गड्ढे की खुदाई करते समय हम उसके धरातल से बाहर को एक पाईप फिट करना भूल गए थे, इसलिए टैंक के पानी के ऊपर से उसके अन्दर को पाईप डालना पड़ता था, और पानी को ग्रेविटी से चूसना पड़ता था। हालांकि हम पाईप को हमेशा टैंक में डूबा रहने देते थे, और पाईप का दूसरा सिरा साथ ही पेड़ में ऊंचा (टैंक के अन्दर वाले पाईप के हिस्से के सिरे की ऊँचाई के स्तर तक) बाँध देते थे।। बाकी पूरा पाईप खेत में पड़ा होता था। इससे पेड़ से पाईप के सिरे को खेत में उतारने पर पानी खुद चल पड़ता था, क्योंकि पाईप में पहले से ही पानी होता था, जो ग्रेविटी से बहकर चुसाव का काम करता था। दोस्तों, उससे हमने सर्दियों में उगने वाली बहुत सी साग-सब्जियां खाईं, जैसे कि मेथी, धनिया, पालक, सरसों, सोया, प्याज-लहसुन की पत्तियाँ आदि। दरअसल उन्हें सिंचाई की बहुत कम जरूरत होती है। एक तो उनकी जड़ें मिट्टी में बहुत ऊपर होती हैं। दूसरा, सर्दियों में जमीन के पानी का वाष्पीकरण नाममात्र का होता है, इसलिए सिंचाई की नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। इन फसलों की पानी की जरूरत भी नाममात्र की होती है। शाम का समय होता था सिंचाई का। उससे पूरी रातभर नमी को जड़ों तक रिसने का समय मिल जाता था, और वह धुप से उड़ती नहीं थी। पानी के पाईप के सिरे पर अंगूठा लगाकर हम पानी की हलकी सी स्प्रे खड़े होकर चारों तरफ बिखेर देते थे, जिससे जमीन की सतह गीली लगती थी, पर पानी नीचे नहीं रिसा होता था। वही गीलापन सुबह तक पौधों की जड़ों तक पहुँच जाता था, जो पर्याप्त होता था। यह तरीका हमने हमारे घर में काम करने वाले एक प्रौढ़ उम्र के कामगार से सीखा था। उन साग-सब्जियों को खरगोश, मोर आदि जानवरों से बचाने के लिए हमने 3 फीट चौड़ी जालीदार चादर (सफेद रंग की, वही जो पोलीहाऊस में प्रयोग होती है) को खेत के चारों तरफ दीवार की तरह खूंटियों से बाँधा हुआ था। इसी तरह, वह टैंक केंचुआ खाद यूनिट से हल्का सा (1-2 फुट) नीचाई पर था। इससे यूनिट तक पानी 10-15 कदम चलकर बाल्टी से ढोना पड़ता था। वह टैंक लगभग अंडरग्राऊंड ही था। केवल उसका 2 फुट ऊँचाई का अतिरिक्त हिस्सा ही जमीन से बाहर को था। इससे टॉप पर वह केंचुआ खाद यूनिट की दीवार के टॉप के लेवल तक आ गया था। टैंक का इतना सा भाग तो जमीन के बाहर रखा जा सकता है, क्योंकि ऊपर बहुत कम पानी का दबाव होता है। कहते हैं कि अंडरग्राऊंड/भूमिगत टैंक पत्थर का ही होना चाहिए। जमीन के ऊपर के टैंक को अधिक मजबूती चाहिए होती है, इसलिए वह टैंक आरसीसी/rcc का होना चाहिए। पर कहते हैं

कि आरसीसी का टैंक यदि लीक/दरार वाला हो जाए, तो उसकी मुरम्मत/रिपेयर नहीं होती। पानी के उपलब्ध हो जाने पर हमने बांस के व अनार के बहुत से पौधे लगाए, जो आज काफी बड़े-२ हो गए हैं। मुझे अनार की टहनियों की छंटाई करने में बहुत मजा आता है। यह सर्दियों के महीनों में की जाती है। उससे अनार के पौधे एक दुल्हन की तरह सज जाते हैं। सर्दियों में उसकी एक 2 फुट की टहनी जमीन में डाल दो और मिट्टी में नमी बनाकर रखो, तो वह जड़ें पकड़कर नया अनार का पौधा बन जाती है।

उस टैंक का निर्माण भी पूर्वोक्त आँगन के टैंक की तरह मस्ती, खुशहाली और अनुकूल परिस्थितियों के सहयोग से निर्बाध रूप से हुआ। हालांकि उसके लिए जो ईंटें मंगवाई थीं, वे कुछ कच्ची लगीं। गाड़ी के ड्राईवर को पहले नहीं बताया गया कि चैक करके लाना। वैसे अभी तक कोई समस्या नहीं आई है टैंक में। उसकी खुदाई करते समय बहुत से पत्थर मिले थे, जो उसकी दीवारों की चिनाई में काम आए। इसलिए हमें बाहर से कम ही पत्थर (केवल दो टिप्पर ही) मंगवाने पड़े। हमने ड्रेनेज पाईप की जगह पर एक लोहे की पाईप डाल रखी थी। पर वह छोटी पड़ गई, और जब उस पर टैंक का मलबा गिरा, तो वह उस मलबे के अन्दर ही दब गई। हमने उसे ढूँढने में बहुत जोर लगाया, पर वह मिली नहीं। खुदाई से टैंक में क्रैक पड़ने का भी डर था, पर बच गए। फालतू की मेहनत बहुत करनी पपड़ी। हम सोचने लगे कि उससे अच्छा तो ड्रेनेज पाईप को लगाने की ही न सोचते। टैंक के अन्दर ड्रेनेज पाईप के सुराख को पक्की कंक्रीट से बंद करना पड़ा। खुशकिस्मती से वहां लीकेज नहीं हुई।

ताजा डला हुआ कंक्रीट एक बच्चे की तरह बढ़ता है। उसके अणु पानी पी-पी कर अपने चारों ओर हाथ-पाँव बढ़ाते रहते हैं, और एक दूसरे को कसकर पकड़ते रहते हैं। इसीसे से तो वह दिन-प्रतिदिन मजबूती प्राप्त करता जाता है। सीमेंट-विज्ञान का दर्शन भी शरीरविज्ञान दर्शन की तरह ही जीवंत है। इसीलिए सीमेंट के काम में एक अलग ही आनंद आता है। सीमेंट की संरचना को स्थापित करना भी एक मानव शरीर की संरचना को स्थापित करने जैसा काम है। वास्तव में, सीमेंट की खोज ही जल-संरचना के निर्माण के लिए हुई थी। वह इसलिए, क्योंकि यह अकेला, व सस्ता पदार्थ है, जो जल में पूरी तरह से मजबूती देते हुए जल में घुलता नहीं है। यह अलग बात है कि आजकल इसका उपयोग विशाल इमारतों को बनाने में हो रहा है, जिससे वातावरणीय प्रदूषण बढ़ रहा है। देखा-देखी में लोग अपने साधारण घर बनाने के लिए भी इसका प्रयोग कर रहे हैं। हालांकि इससे बने घर रहने के लिए आरामदायक नहीं होते। उन्हें आरामदायक बनाने के लिए भारी विद्युत् का प्रयोग करना पड़ता है। इससे भी प्रदूषण कई गुना बढ़ गया है। सीमेंट बनाने के लिए बहुत सी ऊर्जा की जरूरत होती है, जिसका दोहन पर्यावरण की कीमत पर होता है।

दोस्तों, हमारे दूसरे टैंक के बारे में आसपास के इलाके में बहुत सी नकारात्मक बातें भी फैलाई गईं। सुनने में आया कि लोग पीठ पीछे कहते रहते हैं कि एक ही परिवार को दो टैंक दे दिए, जबकि कई परिवारों को एक भी टैंक नहीं मिला था। कुछ लोग यह भी कहते कि सरकारी कर्मचारी होकर स्कीम ले रहे, पर वे यह नहीं समझना चाहते थे कि उस स्कीम पर सभी का लोकतांत्रिक अधिकार था। अपने अधिकार के लिए शांतिपूर्वक प्रयास करना जागरूकता की निशानी है। हालांकि एक टैंक मेरे नाम, और एक मेरे भाई के नाम था। दोनों के अलग-२ राशन कार्ड थे। वैसे उस समय नरेगा के टैंक खुले बंट रहे थे, पर जब लोग खुद ही कोशिश न करे, तो वे अपने-आप तो बनेंगे नहीं। वह बात

फैलाने वाले शख्स हमारे ही गाँव के एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति थे। वे कभी हमारे ही परिवार से अलग हुए थे। उनके नाम का टैंक शैल्फ में नहीं डाला गया था, सैंक्शन के लिए, वार्ड मेंबर के द्वारा। उस वजह से उन्होंने वार्ड मेंबर को भी काफी परेशान किया था। वैसे, उस प्रकार के एक-दो लोग अधिकाँश गाँवों में होते ही हैं। इसीलिए वे उस बात की खुन्नस हमारे उस अतिरिक्त टैंक के ऊपर निकाल रहे थे। दरअसल उन्होंने खुद ही शैल्फ में छोटा टैंक डालने को मना किया था। उन्होंने बड़े व सामूहिक टैंक की मांग शैल्फ में रखवाई थी, और वह सेंक्शन भी हो गया था। पर जब बाद में पता चला कि सभी गांववासियों का हस्ताक्षर किया हुआ अनापत्ति प्रमाणपत्र जमा कराना होता था, तब वे उसे बनाने से मुकर गए। वैसे तो सभी ने हस्ताक्षर कर देने थे। पर वे खुद ही हिम्मत नहीं जुटा सके गाँव वालों के पास जाने की, क्योंकि उन्होंने लगभग गाँव के सभी कामों में अड़ंगा डाला हुआ था। साथ में, वे डरते थे कि यदि सभी के साइन हो गए, तो वे भी मेरे टैंक से पानी कभी न कभी भर सकते हैं, क्योंकि वे अधिकृत हो जाएंगे। वैसे सभी के पास अपने टैंक थे, पर भूमि-प्रेमी अपनी अमूल्य भूमि पर निर्मित संरचना की बंदरबांट के बारे में सोचेगा भी कहाँ। वे विकास के काम को नकारते रहते थे, और उसे बड़े हलके और मजाकिया अंदाज में लेते थे। साथ में, वे विकास के काम करने वाले की टांग भी बेवजह खींचते रहते थे। वे गाँव के हरेक विकास के काम में रोड़ा अटकाते थे। उनकी वजह से गाँव के बहुत से काम रुके हुए थे, चाहे वह गाँव तक कार-जीप योग्य सड़क का हो, जंगली तालाब से खेत में बने टैंक तक बनी पानी को ले जाने वाली कूहल का रखरखाव हो, जंगली जानवरों से बचाने के लिए खेतों की इलेक्ट्रिक बाड़बंदी हो, या अन्य कोई भी काम। वे कहते थे कि पहले सब इकट्ठे होकर पुराने मनमुटाओं को सुलझाओ, तभी आगे काम होगा, पाकिस्तान के हठ की तरह। वे यह नहीं समझते थे कि नए रिश्तों से पुरानी बातें भी खुद ही सुलझ जाती हैं। वैसे वे पुरानी मनमुटाव की बातें काल्पनिक अधिक होती थीं, और तथ्यात्मक कम। जब उन्हें किसी समारोह बगैरह में आने के लिए और इकट्ठे बैठने के लिए न्यौता दिया जाता था, तब वे न्यौता देने वाले का भी अपमान करते थे, और समारोह में भी नहीं आते थे। छोटी-२ बात पर रूठ कर अटल हठ करना तो जैसे उनकी आदत में शुमार था। वे गाँव वालों से बिलकुल भी सहयोग का रिश्ता नहीं रखते थे। दुःख इस बात का था कि उनकी जमीन हर विकास के काम के बीच में आ जाती थी। पर वे अपनी जमीन का एक इंच टुकड़ा भी गाँव की भलाई के लिए इस्तेमाल नहीं करने देना चाहते थे। उनके खुद कमजोरी और बीमारी से ग्रस्त हो जाने पर भी उनका यही हाल रहा। ये कभी पता नहीं चला कि वे अपनी जमीन अपने साथ कहाँ ले जाना चाहते थे। उनके असहयोग के रवैये को एक और परिवार ने बढ़ा रखा था। वह परिवार तो शिक्षित, नौकरीपेशा, और आर्थिक रूप से समृद्ध भी था। पर उस परिवार का वारिस नौजवान बड़ा ही धूर्त, पंगेबाज, जेल में रहकर आया हुआ, और शराबी-कबाबी था। शायद इसी टेंशन से वे भी उपरोक्त सहयोगी परिवार के साथ उसी के नक्शेकदम पर चलने लग जाते थे, हालांकि उसका पिछलग्गू जैसा बनकर। उस विरोधी नेता-परिवार में व्यवहार का ऐसा जादू मौजूद था कि वह अधिकाँश मामलों में पूरे इलाके को झूठमूठ में बरगला कर रखता था।

दोस्तों, मैंने देखा कि लोग चाहते थे कि वार्ड मैम्बर खुद ही उनके सारे टैंक बनाता, व अन्य काम भी वही करवाता। वार्ड मैम्बर उनके साथ हर जगह जाने को तैयार था, उनकी हर मदद करने को तैयार था। उसमें जनहित में काम करने की व विकास करने की बहुत लगन थी। यहाँ तक कि वह उनकी रजामंदी के बिना ही उनके फायदे के लिए

उनके नाम का टैंक व अन्य काम शैल्फ में डाल देता था। जब शैल्फ सैंक्शन होकर आती थी, तब अधिकाँश लोग मुकर जाते थे। यदि किसी का नाम नहीं आता, तो चीख पड़ते कि मेरा नाम शेल्फ में क्यों नहीं डाला। सबके ऊपर अजीब सा आलसपन सवार था। लोग तो यहाँ तक चाहते थे कि वे वार्ड मेंबर को जलील, परेशान भी करते रहते, और वह उनका सारा काम भी खुद करता रहता। पता नहीं, कई लोग विकास से दूर क्यों भागते हैं, जब यह प्रमाणित तथ्य है कि भौतिक हो या आध्यात्मिक विकास, दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। वार्ड मेंबर पिछड़े वर्ग से भी था, शायद तभी सारे लोग खोखले व आत्म-हानिकारक घमंड से भरे रहते थे। वार्ड मेंबर मेरा अच्छा दोस्त था। मैं उसके साथ अपनी गाड़ी लेकर हर उस जगह घूमा, जहां उसको मेरी जरूरत पड़ी। मैंने उसे जरूरत पड़ने पर उसकी उतनी आर्थिक सहायता भी प्रदान की थी, जितनी हो सकती थी। सभी लोग मुझे ताना मारते थे कि मैंने पैसे लुटवाए। पर वे यह सुनने को तैयार ही नहीं थे कि उसकी सहायता से मेरे लाखों के काम बने थे।

गाँव का माहौल आजकल इतना भ्रष्ट हो चुका है कि मैंने घर से दूर अपने खेत में एक बांस का पौधा लगाया था। वह बहुत सुन्दर फैल रहा था। उसे 1 साल बाद ही कोई मिट्टी के साथ उखाड़ कर ले गया। सब लोग उस घटना से बहुत हैरान थे, और बोल रहे थे कि अब तो पेड़ों की भी चोरी होने लग गई है। दोस्तों, मैं उस बांस के पौधे को फारेस्ट विभाग की एक नर्सरी के कर्मचारियों से लाया था। उन्होंने 20-30 पौधे बिना शुल्क के जनहित में दे दिए थे। इसी तरह, सीटेरिया और नेपियर किस्म की घास की जड़ें एक प्रगतिशील पशुपालक के घर से लाया था, जब मैं गौ-सेवा के काम से उनके घर गया था। वह घास एकबार रोप दिए जाने पर खुद आगे से आगे फैलती रहती है। उसकी एक जड़ को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रोपने पर वह पूरा घास का झुण्ड बन जाता है।

मित्रो, जल ही जीवन है, जल ही आत्मा है। इसीलिए जलदान को महादान की श्रेणी में रखा गया है। जनश्रुति है कि जब तक धरती पर जल-भण्डार मौजूद है, तब तक उसे बनाने वाला आदमी स्वर्ग में निवास करता है। इसीलिए तो पुराने समय में राजा व धनाड्य किस्म के लोग कुँए, बावलियां, तालाब आदि बनाया करते थे। मैंने इस प्रभाव को स्वयं महसूस किया। जल-भण्डार बनाने के बाद मेरी आत्मा प्रफुल्लित रहने लगी। मेरी कुण्डलिनी मेरे मन में जल की तरह हिलोरे खाने लगी। मुझे एक विचित्र से भरपूरपने की संतुष्टि महसूस होने लगी। मैंने जो आँगन में टैंक बनाया था, वह तो लम्बे काल तक प्रयोग किया जाने वाला था। वह इसलिए, क्योंकि घर के आगे खाली गड्ढा कौन रखना चाहता है। इसी तरह मेरा मन भौतिक कार्यों में भी अधिक लगने लगा। इस प्रकार से जल-भंडारण की व्यवस्था करने के कारण मुझे बहुत से आध्यात्मिक व भौतिक लाभ मिले।

इस ई-पुस्तक को पढ़ने के लिए आपका धन्यवाद। अधिक जानकारी हेतु आप वेबसाईट demystifyingkundalini.com पर विजिट कर सकते हैं।

प्रेमयोगी वज्र द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें-

1) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)

2) Love story of a Yogi (what Patanjali says)

3) Kundalini demystified (what Premyogi vajra says)

4) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

5) kundalini science- a spiritual psychology

6) The art of self publishing and website creation

7) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला

8) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है

9) केंचुआ पालन- एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

10) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वेबसाईट

11) my kundalini website on e-reader